।। ओ३म्।।

शुद्ध सत्यनारायण कथा

प्रणेता

आचार्य प्रेमभिक्षु

सम्पादक

आचार्य स्वदेशः

प्रकाशक

सत्य प्रकाशन, मथुरा

छठवीं बार ३०००　　सन् २००२　　मूल्य ८)

भूमिका

कष्ट और क्लेश से कराहते मानव की सुख शान्ति का एक ही मार्ग है, दूसरा नहीं। वह मार्ग है- जिसे हमारे देश की सरकार ने अपना आदर्श बनाया है और जिसका वर्णन वेद, उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थ एक स्वर में करते हैं। वह आदर्श है - 'सत्यमेव जयते' अर्थात् 'सदा सत्य की जय होती है। शतपथ ब्राह्मण में कहा- असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमयेति।'

प्रभो हमें असत्य से सत्य की ओर ले चल, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल, मृत्यु न देकर अमृत दे, परन्तु 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' प्रत्येक वस्तु जो उत्पन्न होती है, वह अवश्य ही नष्ट होती है। अतः यह मृत्यु जिससे हम बचना चाहते हैं, क्या है ? मृत्यु का वास्तविक अर्थ है- दुख, कष्ट, क्लेश, बीमारी, भूख, व्यभिचार, दुराचार, परतन्त्रता, भीरुता, कमजोरी, हार, घूस, ब्लैक और इस प्रकार के सभी दुर्गुण और दुरित। और अमृत का अर्थ है वे सभी सद्गुण और वस्तुयें जो कल्याणकारी हैं। भक्त इच्छित वस्तुओं की इच्छा से और दैन्यता जनित बुरी स्थिति एवं बुराइयों से बचने के लिए प्रार्थना करता है तो कहता है- मृत्यु न दे, अमृत दे। इसी प्रकार अन्धकार के बदले वह ज्योति माँगता है।

झूठ अन्धकार भी है, मृत्यु भी। सत्य रोशनी भी है, जीवन भी। तो सत्य की प्राप्ति में ही प्रकाश और अमृत की प्राप्ति भी निहित है। इसलिये-

''एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाय, जो तू सींचे मूल को फूले-फले अघाय।''

- इस उक्ति के अनुसार सत्य ही सर्वस्व है। यहाँ तक कि सत्य ही नारायण है।

हमारे देश में 'सत्यनारायण कथा' का विशेष प्रचलन है। दुःखों से बचने के लिये हम सत्यनारायण की कथा कराते हैं कि हम सत्यनारायण भगवान् के उपासक हैं, फिर भी दुःखी हैं। क्यों? जल के समीप बैठकर हम शीतलता का अनुभव करते हैं और अग्नि के पास बैठकर अग्नि का, पर आनन्दघन सत्यनारायण की उपासना करके भी उसके समीप बैठकर भी आनन्द-शून्य क्यों ? बहुत सीधा सा उत्तर है इसका कि हम उपासना करते तो हैं, पर उसके विज्ञान को बिना जाने। हम ईश्वर को मानते तो हैं, पर उसके स्वरूप को बिना जाने। विद्युत् (बिजली) कितनी उपयोगी वस्तु है, पर उसका अनेकविधि लाभ वही ले सकता है जो उसके विज्ञान को, उसके रहस्य को जानता है। जो उसके 'टैकनिक से प्रयोग-विधि से अपरिचित हैं वह यदि प्रयोग करेगा तो 'खतरा' उपस्थित रहेगा, यहाँ तक कि जीवन हानि भी सम्भव है। ठीक इसी प्रकार उपासना के विज्ञान, उसके रहस्य को बिना जाने उपासना करने वाला उपासना के लाभ-ईश्वरीय गुणों से युक्त होकर शान्ति प्राप्ति से तो वञ्चित रहता ही है, प्रायः उसका दुरुपयोग करने से आत्मिक जीवन की हानि भी कर

बैठता है, अर्थात् अनेकविध दुर्गुणों और दुरितों का और भी अधिक शिकार बन अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर लेता है।

जो जितना बड़ा 'भगत' जिसका जितना लम्बा तिलक वह उतना ही बड़ा ठग, दुराचारी पापग्रस्त है, ऐसा प्रायः देखने में आता है। इतना ही नहीं हम तो देखते हैं कि संसार के सब देशों से अधिक आलसी, निकम्मे, हरामखोर, कर्त्तव्य-शून्य और चरित्रहीन लोग हमारे यहाँ हैं, इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश की नई पीढ़ी धर्म, ईश्वर और भक्ति (उपासना) से ही घृणा करने लगी है।

इस दुरावस्था का मूल है- सत्य नारायण कथा, सन्तोषी माता, सतसाईं बाबा, बाल योगेश्वर रजनीश आदि के मिथ्या महात्म्य की कहानियाँ अथवा सत्यनारायण भगवान् की उपासना के विज्ञान या रहस्य को बिना जाने उपासना करना।

वेदों में इसी उपासना-विज्ञान का विधान विस्तार से वर्णित है। पवित्र गायत्री मन्त्र के चार पदों में सत्यनारायण प्रभु की उपासना के इसी विज्ञान (१) ईश्वर का नाम-रूप (२) ईश्वर का कर्त्तव्य (३) ईश्वर प्राप्ति का साधन (४) और उपासना की फल-श्री का संक्षेप में विवेचन है। और गायत्री मन्त्र का भी सार है त्रिमात्रिक-'ओ३म्'। यह वेदोक्त सत्यनारायण-उपासना-विज्ञान हमें कहता है।

(१) ईश्वर, जीव, प्रकृति-इन तीनों सत्यों में ईश्वर पराकाष्ठा का सत्य है। नारायण ही सत्य है।

(२) पर नारायण की प्राप्ति का विज्ञान है- सत्य ही नारायण है ऐसा मानकर सम्पूर्ण जीवन-कर्त्तव्य,

नीति, सदाचार, मर्यादा एवं विवेक के आधार पर विचार एवं आचरण करना सत्य-निष्ठा का समग्र रूप है। कर्त्तव्य क्षेत्र में एक ब्राह्मण का सत्य है-अज्ञान नाश, एक क्षत्रिय का सत्य है अन्याय-नाश करना। और एक वैश्य का सत्य अभाव नाश करना और शूद्र का जीवन सत्य है कि इन तीनों का श्रम साधना से सहयोग सब करना। इस गुण कर्म-कर्म स्वभावानुसार प्राप्त वर्णाश्रम धर्म का पालन लाभ हानि यश-अपयश का बिना विचार किये सभी के सुख की कामना से, यज्ञ भावना से ईश्वराज्ञा समझकर करना ही सत्य नारायण' भगवान् का पूजन है। यह वेदोक्त सत्यनारायण कथा जब तक हमारे आचरण और जीवन-व्यवहार से मुखरित होती रही, हम जगद्गुरु और विश्व सम्राट् बने रहे। दुर्भाग्य से आगे यह स्थिति नहीं रही। यह जो सत्यनारायण कथा आजकल प्रचलित है, इसे तो सत्यनारायण कथा सुनने वालों की कहानी कहा जा सकता है। अनेक असम्भव और अविवेक पूर्ण कल्पनाओं के कारण से इसे शुद्ध 'कथा-महात्म्य' भी कह सकते हैं। इस मिथ्या माहात्म्य से तो अनेक विध पाप, दुराचार और भ्रष्टाचार को ही प्रोत्साहन मिलता रहा है। वस्तुतः जिस कथा को सुनकर शतानन्द (ब्राह्मण) उल्कामुख एवं तुंगध्वज (राजा) क्षत्रिय साधु नामक वैश्य तथा लकड़हारा (शूद्र) और लीलावती कलावती आदि का (यदि इन नामों को सत्य मान लिया जावे तो) आत्मकल्याण हुआ था वह सत्य नारायण की शुद्ध कथा तो वेद और वेदानुकूल उपनिषद् आदि ग्रन्थों में ही है।

महर्षि दयानन्द के मानव-समाज पर अमित उपकार हैं, उनमें महत्तम उपकार हैं- उन्होंने सत्यनारायण

ओ३म् की उपासना की भूली वैदिक डगर हमें फिर से बताई, उसी के पुण्य प्रकाश में हमारा यह लघु प्रयास है। आर्य जगत् में 'सत्यनारायण कथा' के रूप में कई पुस्तकों के होते हुए भी शुद्ध सत्यनारायण कथा के प्रणयन की आवश्यकता इसके परायण से स्वयं ही स्पष्ट हो जावेगी।

पवित्र गायत्री एवं ओंकार के जपानुष्ठान के रूप में ईशोपसना की सरलतम एवं श्रेष्ठतम विधि इस कथा के माधयम से प्रस्तुत की गई है। प्रायः सभी वैदिक सिद्धान्त भी इस कथा में समाविष्ट हुए हैं। हमारे परिवार और उनमें भी मातायें एवं बालक इससे विशेष रूप से लाभान्वित हों, ऐसा यत्न रहा है। आरम्भ हमने प्रचलित कथा के क्रम में ही किया है। नैमिषारण्य तीर्थ को नारद मुनि की ध्यानावस्था के अलंकार के रूप में प्रस्तुत करने का विचार था, जैसा कि हमने प्रस्तावना में विवेचन किया है, पर इसे भी जन सामान्य के लिए क्लिष्ट कल्पना अनुभवकर कथा प्रवाह को सहज रूप देना ही उपयुक्त समझा है।

प्रस्तावना में पू० महात्मा आनन्द स्वामी जी के विचारों से विशेष सहायता ली है। उनके तथा सम्मान्य श्री स्वामी विदेह जी, श्री महात्मा वेदानन्द जी, श्री पं० श्रीराम जी शर्मा, श्री पं० रेवती प्रसाद जी आदि की कथाओं और 'स्वाध्याय सन्दोह' 'उपनिषद् प्रकाश' आदि अन्य विद्वानों के ग्रन्थों से आवश्यक सहयोग लेने के लिए हम सभी के प्रति कृतज्ञ हैं। श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी एवं श्री पं० सोमदेव जी शास्त्री के साथ विचार विमर्श से भी मार्ग प्रशस्त हुआ, तदर्थ दोनों विद्वानों के हम हृदय से आभारी हैं।

हमारी शुद्ध साहित्य ग्रन्थमाला में प्रकाशित शुद्ध रामायण, शुद्ध कृष्णायन, शुद्ध महाभारत, शुद्ध गीता,

शुद्ध हनुमच्चरित, शुद्ध मनुस्मृति, शुद्ध वृहदारण्यक-आदि ग्रन्थ-रत्नों को वैदिक परिवारों और अनेकों विचारशील पौराणिक परिवारों ने भी आशातीत उत्साह से अपनाया है। हमारा विश्वास है 'शुद्ध सत्य नारायण कथा' को और भी अधिक प्यार औद आदर मिलेगा।

आर्य जाति के समक्ष आज एक समस्या है। पौराणिक बन्धुओं में विवेक और तर्क के अभाव में अन्ध श्रद्धा होने से 'पोपलीला' है और आर्यजनों में तर्क को अति होने से, श्रद्धा के अभाव के कारण 'लोपलीला' है। ये पोपलीला और लोपलीला दोनों ही विनाश का ताण्डव रच रही हैं। विश्वास है 'शुद्ध सत्यनारायण कथा' को अपनाने से जहाँ पौराणिक परिवारों में श्रद्धा को मेधा-विवेक या तर्क को पुण्यमय आधार मिलेंगे, वहाँ वैदिक परिवारों में विवेक या तर्क को सत्य श्रद्धा का सम्बल मिलकर सभी के कल्याण की राह प्रशस्त होगी। इसी भावना से भावित हो अपने 'तपोभूमि परिवार' को यह सात्विक भेंट उपस्थित कर रहे हैं।

— आचार्य प्रेमभिक्षुः

(कथाकार) आचार्य की विशेषतायें

(१) सच्ची ईश्वर भक्ति और तज्जन्य सत्यमय जीवन एवं सदाचारण की भावनायें जन मानस में जगाने के लिये 'शुद्ध सत्यनारायण कथा' के अधिकाधिक प्रचार की आवश्यकता है, पर उससे भी पहली आवश्यकता है कथाकार या आचार्य के पवित्र और सत्य-परायण जीवन की। ''यो आचारं ग्राहयति स आचार्य:'' आचार्य ऐसा हो जो अपने व्यक्तित्व की छाप श्रोताओं पर छोड़े, जिससे वे सदाचारी बन सकें।

(२) कथाकार का उच्चारण बहुत शुद्ध, और सुमधुर हो, जिसमें वातावरण श्रद्धोपेत हो सके।

(३) कथा में प्रयुक्त मन्त्रों तथा गीतों को कथाकार सरसता के साथ गाये और गवाये।

(४) कथा सवा घण्टे में पूर्ण हो जावे- ३० मिनट में यज्ञ-गीतिका तथा ४५ मिनट में कथा, इसलिए कथा संक्षिप्त ही रखी गई है। जो अधिक समय दे सकें वे पाद-टिप्पणी (फुट नोट) भी अवश्य पढ़ें, अन्यथा उन्हें छोड़कर पढ़ें। जिन्हें और भी कम समय लगाना हो वे मन्त्र एवं श्लोक छोड़कर धारावाही हिन्दी में कथा कर सकते हैं।

(५) कथा-स्थल एवं यज्ञ वेदी सुसज्जित, अगरबत्ती आदि से सुगन्धित हो। घृत-सामग्री-समिधा यज्ञ-पात्र और कथा प्रसाद शुद्ध-स्वच्छ हों। कथाकार स्वयं निरीक्षण कर लेवें।

कथाकार (आचार्य) वरण

यजमान- ओमावसो सदने सीद। कथाकार- ओं सीदामि।

यजमान- अहमद्य सत्यनारायण कथा करणाय भवन्तं वृणे। कथाकार-वतोऽस्मि।

यज्ञ (हवन)

(१) जिनके घर कथा हो यज्ञ में पति-पत्नी दोनों बैठें न हों तो अन्य बैठें।

(२) यज्ञ से पूर्व (१) आचार्य वरण (२) आचार्य तिलक (३) यजमान तिलक (४) चन्दन लगाना। नवीन यज्ञोपवीत धारण आदि कृत्य हों। अग्न्याधान से पूर्व दीपक जलावें।

(३) 'नित्य कर्म विधि:' के अनुसार यज्ञ सामान्य ही करें। पूर्णाहुति से पूर्व व्रत धारण के ५ मन्त्रों तथा गृहस्थ धर्म पञ्चक के ५ मन्त्रों से आहुति दें।

(४) विशेष स्थिति या समय के अभाव में यज्ञ के स्थान पर सामूहिक गीत से कथा आरम्भ करें।

(५) कथा दक्षिणा के रूप में कोई एक बुराई छोड़ने और एक अच्छाई अपनाने का व्रत दिलाकर

संकल्प करायें। कुछ व्रत निम्न हो सकते हैं।

(१) प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठना। (२) ओ३म् जप और गायत्री का चिन्तन करना। (३) अपने बड़ों को अभिवादन (नमस्ते) करना। (४) दैनिक सन्ध्या। (५) कम से कम पाक्षिक यज्ञ। (६) आसन-व्यायाम। (७) परिवार में सभी से प्रेम रखना। (८) परिवार में सायं सत्संग लगाना। (९) व्यापार-व्यवसाय में सत्य और ईमानदारी का व्यवहार करना। (१०) दहेज ठहराव न करना। (११) धूम्रपान, भाँग, गाँजा, शराब, माँसाहार का त्याग आदि।

शान्ति पाठ के पश्चात् सार्वभौम दिव्यघोषों के साथ कार्यक्रम समाप्त करें।

प्रस्तावना

प्रचलित सत्यनारायण कथा का वर्णन स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड के अन्तिम पाँच अध्यायों में आता है। इन पाँच अध्यायों में १६२ श्लोक हैं। श्लोकों में यही बतलाया है कि श्रीसत्यनारायण व्रतकथा सुनने तथा व्रत धारण करने से दुःखी ब्राह्मण सुखी हो गया, एक लकड़हारा धन तथा पुत्र से सम्पन्न हो गया और अन्त में स्वर्ग भी जा पहुँचा, एक राजा तथा एक वणिक् को पुत्र-लाभ हुआ, व्रत को भूल जाने से वणिक् कष्ट में भी पड़ गया फिर व्रत करने पर कष्ट दूर हो गया, ऐसी ही और भी बातें लिखी

हैं, परन्तु वह व्रत-तप और कथा क्या है, इसका वर्णन कहीं भी नहीं है।

अब ध्यान पूर्वक सुनिये कि स्कन्द पुराण के इन पाँचों अध्यायों का शुद्ध (सत्य) तात्पर्य क्या हो सकता है ?

स्कन्द पुराण के आरम्भ ही में लिखा है कि नैमिषारण्य तीर्थ सारे तीर्थों में उत्तम और समस्त क्षेत्रों में श्रेष्ठ है। इसलिये सबसे पूर्व यह देखना चाहिए कि यह नैमिषारण्य तीर्थ है कहाँ ? और तीर्थ कहते किसे हैं, इसका निर्णय होने से श्री सत्यनारायण व्रत की बात भी भली भाँति समझ में आ सकेगी।

तीर्थ किसे कहते हैं ?

तीर्थ तारने वाले को कहते हैं, जो भव से पार करदे।

स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में मानस तीर्थों का वर्णन आता है, लोपामुद्रा के पूछने पर अगस्त्य ऋषि ने मानस तीर्थ बतलाते हुए कहा है-

शृणु तीर्थानि वदतो माँनसानि ममानघे।
येषु सम्यङ् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिं॥

"हे निष्पापे ! मैं मानस तीर्थों का वर्णन करता हूँ, सुनो इन तीर्थों में स्नान करके मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है।"

अब उन तीर्थों * के नाम सुनिये जो अगस्त्य जी ने बतलाये-

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः।
सर्वभूतदयतीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
न जलाप्लुत देहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्ध मनो मलः॥

- काशी खण्ड ३-२९ से ३३

- ''सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रिय संयम तीर्थ है। सब प्राणियों के प्रति दया भी तीर्थ है, सरलता, दान, मन का दमन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, मीठा प्रिय बोलना भी तीर्थ है। ज्ञान-धृति और तपस्या यह सब तीर्थ हैं। इनमें

* तरन्ति येन तत्र वा तत् तीर्थम्। गुरु यज्ञः पुरुषार्थो मन्त्र जलाशयो वा॥ उणादि (२-७)
जो तार देता है या जहाँ से तरते हैं उसे तीर्थ कहते हैं। गुरु-यज्ञ पुरुषार्थ मन्त्र और जलाशय को भी तीर्थ कहते हैं।-

ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है, मन की परम विशुद्धि तीर्थों का भी तीर्थ है, जल में डुबकी लगाने का नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय संयम रूप स्नान किया है वही स्नान है। और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।''

अब थोड़ा विचार कीजिये- यह जितने मानस तीर्थ गिनाये हैं क्या यह सब योग दर्शन के यम नियमों के ठीक अनुकूल हैं, या नहीं ?

सारे दुःखों से छूटने और परम आनन्द के भण्डार के पास पहुँचने के लिये सबसे पहली आवश्यक बात यही है कि साधक यम नियम-अहिंसा सत्य-अस्तेय ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह, शौच सन्तोष तप-स्वाध्याय ईश्वर-प्राणिधान के तीर्थ में स्नान करे। यम-नियमों को अपने जीवन में ढालने से चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध होने लगता है, मन की चञ्चलता मिटने लगती है और एकाग्रता का तार बँध जाता है। जब साधक मन मन्दिर के अन्दर बैठ जाता है तो समझो कि वह नैमिषारण्य तीर्थ में ही पहुँच जाता है। इस पवित्र तीर्थ में पहुँच कर उसे ध्यान अवस्था का स्वाद आने लगता है।

'नैमिषारण्य' कहते हैं उस वन-जंगल को जहाँ केवल पलक झपकते ही आत्म-दर्शन होते हैं, जब मन मन्दिर में साधक की वृत्ति निरुद्ध हो जाती है, तब केवल पलक झपकने के अति अल्प काल ही में सत्य नारायण के दर्शन हो जाते हैं। यही है वह नैमिषारण्य (हृदय रूपी जंगल) जहाँ योगी नारद पहुँच गये थे, वह मृत्यु लोक के वासियों को अत्यन्त दुःखी देख गये थे, उनके दुःख दूर करने का वह उपाय सोच रहे थे परन्तु

उन्हें कुछ सूझा नहीं, तब उन्हें ध्यान अवस्था के जंगल में पहुँचने का विचार आया कि वहाँ सारे जीव-जन्तुओं में सर्वत्र व्याप्त नारायण के दर्शन होते ही उनसे कोई सरल उपाय पूछूंगा तो वह प्रभु अवश्य उपाय बतलायेंगे।

एक सच्चे भक्त और साधक की अभिलाषा होती भी यही है, वेद ऐसे साधक की मनोकामना को प्रकट करने के लिये कहते हैं -

ओं उत स्वया तन्वा संवदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हत्यमहृणानो जुषेत कदा मृडीक सुमना अभिख्यम्॥

- ऋ0 मं0 ७ सूक्त ७६ मं0 २१

हे सबसे श्रेष्ठ सुन्दर मनमोहक प्यारे ! वह दिन कब आयेगा जब मैं आत्मा से तेरे साथ बातचीत करूँगा कब मैं तेरा अन्तरंग बनूंगा, वह शुभ घड़ी कौन सी होगी जब तू प्रसन्न होकर मेरी भेंट स्वीकार करेगा और हे प्रभो ! कब मैं अपने पवित्र निरुद्ध मन से तेरा दर्शन पाऊँगा ?

योगी नारद भी यही पवित्र अभिलाषा लेकर जा पहुँचा- नैमिषारण्य तीर्थ में जहाँ श्री सत्यनारायण के दर्शन होते हैं, और जब नारायण ने देखा कि बड़ी पवित्र अभिलाषा लेकर नारद जैसा योगी साधक आ गया है तब नारायण ने दुःखी दुनिया को सुखी करने का यह सरल उपाय बतलाया कि *''सब लोग सत्यनारायण व्रत धारण करें।''*

'सत्' विवेचन- सत् शब्द 'अस' इस धातु से सिद्ध होता है। 'यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत् सत्सद् ब्रह्म' जो सदा वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में जिसका बाध न हो उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं।

'नारायण' विवेचन- तो अब सत् के पश्चात् 'नारायण' शब्द आता है, नारायण उसी सत् ही का विशेषण है नारायण के बड़े सुन्दर अर्थ भगवान् मनु ने किये हैं। वे लिखते हैं-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।
ता तदस्तायने पूर्वं नारायणः स्मृतः॥ (मनु0 १-१०)

'जल और जीवों का नाम नारा है, वह अयन अर्थात् निवास स्थान है, जिसका इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम नारायण है।' सत्य को ही नारायण मानकर जीवन में सत्याचरण के व्रत का सनिष्ठ अनुष्ठान भी सत्यनारायण व्रत का अभिप्राय है-

सत्यमिच्छेद्वदेच्चापि सत्यमेव विचारयेत्।
कुर्यादात्मसात्सत्यं व्रतं सत्यस्य धारयेत् ॥१
विधातुं सत्यपूर्णं च ह्येतच्चास्ति व्रतं खलु।
कर्त्तव्यं श्रद्धया तत्तु सर्वैरेव नरैः सदा ॥२

प्रयच्छिति सुखं लोके शान्ति सत्यं परत्र च।
आत्मीयत्वेन सत्यस्य नारायणः प्रसीदति॥३
नारायण स्वरूपं हि सत्यमस्ति च यो नरः।
व्रतं गृहणाति सत्यस्य भवति तस्यानुकम्पितः॥४

'सत्य की ही भावना करनी चाहिए, सत्य का ही विचार करना चाहिए, सत्य ही भाषण करना चाहिए और आचरण में भी सत्य को ही धारण करना चाहिए। यही सत्यनारायण व्रत है जिससे सम्पूर्ण जीवन सत्यमय बन जाता है। इसको श्रद्धापूर्वक पालन करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। (१-२) सत्य के प्रभाव से ही इस लोक में सुख और परलोक में शान्ति प्राप्त हो सकती है, और भगवान् की कृपा का लाभ भी प्राप्त होता है। वास्तव में सत्य भगवान् नारायएा का ही एक रूप है, इसलिये जो उसका व्रत ग्रहण करता है, उस पर भगवान की कृपा दृष्टि अवश्य होती है।' (३-४)

व्रत किसे कहते हैं ?

किसी नियम को धारण करके उस पर कटिबद्ध हो जाने का नाम व्रत लेना है आत्म-शुद्धि और शरीर-शुद्धि की भावना से उपवास करना भी व्रत कहलाता है, परन्तु व्रत का अर्थ केवल उपवास ही नहीं है. यह तो इस महान शब्द को बहुत संकुचित कर देना है।

यजुर्वेद में व्रत का स्वरूप इस प्रकार समझाया गया है -

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ यजु० १।५

हे सर्वोन्नति साधक प्रभो ! आप व्रतों के पालक और रक्षक हैं। मैं भी व्रत का अनुष्ठान करूँगा। मैं अपने व्रत को पूर्ण कर सकूं मुझे ऐसी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान कीजिए। मेरा व्रत यह है कि मैं असत्य को छोड़कर सत्य को प्राप्त होता हूँ।

इस मन्त्र के अनुसार व्रत का अर्थ हुआ किसी दुर्गुण, बुराई को छोड़कर किसी उत्तम गुण को जीवन में धारण करना। आयुर्वेद के ग्रन्थ में कहा है -

उप समीपे यो वासो जीवात्मा परमात्मनः।
उपवासः स विज्ञेयो न कायस्य शोषणम्॥

जीवात्मा का परमात्मा के समीप होना, परमात्मा की उपासना करना, परमात्मा के गुणों को जीवन में धारण करना, इसी का नाम उपवास है। शरीर को सुखाने का नाम उपवास नहीं है।

जब सत्यनारायण के समीप रहने, पग-पग उसी की छत्रछाया में रहने, उसी के दर्शन पाने के लिये यत्नशील रहने और उसी के लिये जीने और उसी के लिये मरने का व्रत ले लिया जाता है, जैसे पति-पत्नी

एक दूसरे को वर कर व्रती बनते हैं, ऐसे ही भक्त के लिए आवश्यक होता है कि वह सत्यनारायण को वर कर व्रती बने। तभी सत्यनारायण व्रत का तात्पर्य पूर्ण हो सकेगा।

व्रत धारण करने वाले के लिये कुछ विशेष नियम होते हैं। भक्त अथवा साधक या साधिका व्रत ले कि- मैं आज से तपस्या का जीवन व्यतीत करुंगा या करुंगी। प्रातः ब्रह्म मुहुर्त में या कम से कम सूर्योदय के पूर्व ओ३म् के उच्चारण पूर्वक उठूंगा। उठकर प्रातः कालीन मन्त्रों का पाठ या गायत्री का जप करूंगा। गुरुजनों को अभिवादन करूंगा, इन्द्रियों की तृप्ति के लिये कोई कुकर्म नहीं करूंगा। सदा शुद्ध पवित्र रहने का स्वभाव बना लूंगा। मेरा आहार, विचार, आचार-व्यवहार, व्यापार आदि सदा शुद्ध पवित्र और सात्विक रहेगा। अब मेरी वाणी मीठी ही बोलेगी, मेरा मन सत्य से भरपूर रहेगा, मैं यथाशक्ति मन-वचन-कर्म से सबका कल्याण करने का यत्न करूंगा। चलते-फिरते, जागते-सोते भगवान् सत्यनारायण के पवित्र नाम ओ3म् ही का जप करते रहूंगा। जीवन निर्वाह के लिये सत्यता से धन अन्न उपार्जन करूंगा। मैं आश्रम धर्म का पालन करते हुए एक आदर्श ब्रह्मचारी, एक आदर्श गृहस्थ, एक आदर्श वनस्थी एवं एक आदर्श सन्यासी बनूंगा। मैं एक आदर्श ब्राह्मण के रूप में राष्ट्र के अज्ञान निवारण अथवा एक सच्चे क्षत्रिय के रूप में राष्ट्र के अज्ञान-नाश अथवा एक आदर्श वैश्य के रूप में राष्ट्र के अभाव के दूरीकरण अथवा एक आदर्श शूद्र के रूप में ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य की व्रत-साधना में सेवा व्रत द्वारा सहायक बन प्रभु की प्रजा को प्यार देकर

ऐसे व्रती और तपस्वी ही श्री सत्यनारायण भगवान् की वेद शास्त्रानुमोदित सत्य कथा सुनने के अधिकारी हैं और वही इस कथा को समझ भी सकेंगे।

यह है प्रचलित पौराणिक कथा का वैदिक दृष्टिकोण से संक्षिप्त विवेचन। अब हम सत्यनारायण भगवान् के नाम, रूप कार्य और महिमा की प्रकाशक तथा प्रभु प्राप्ति के साधनोपायों से युक्त वेदोक्त कथा को जिसे वेदों के सार रूप 'गायत्री मन्त्र' और उसके भी सार 'ओ३म्' के एक-२ पद द्वारा प्रभु की अमर वाणी वेद में उपदिष्ट किया गया है, प्रस्तुत कर रहे हैं। परम पवित्र गायत्री मन्त्र का यह सरलतम सविधि अनुष्ठान और परम पावन प्रणव (ओंकार) का श्रेष्ठतम सविधि जप ही सत्यनारायण का अनुष्ठान है जिसका व्यावहारिक स्वरूप और फल-श्री है- सत्य चिन्तन, सत्य-श्रवण, सत्य दर्शन, सत्य भाषण, सत्याचरण, सत्कर्म और सद्व्यवहार। सत्यनारायण की यह साचार साधना। (उपासना) ही विश्व मानव की सुख-शान्ति का मूल है। आयें, वेद मन्त्रों से सम्पुष्ट इस कथा से हम जीवन धन्य करें।

- आचार्य प्रेमभिक्षुः

वैदिक पुस्तकालय

।। ओ३म् ।।

शुद्ध सत्यनारायण व्रत कथा

अथ प्रथमोऽध्याय:

(सत्यनारायण नाम विचार)

ओं शन्नो मित्र: शं वरुण: शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पति: शन्नो विष्णुरुरुक्रम:।। यजुर्वेद ३६।९
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि !
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि।
तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारम्।
ओं शान्ति: शान्ति: शान्ति:।। तै० आ०७।१

मित्रवत् प्रिय, सबके ग्रहण करने योग्य, सर्व पूज्य ऐश्वर्यवान्, सबके महान् स्वामी महा पराक्रमी, सर्व व्यापक भगवान् सत्यनारायण हमारे लिये कल्याणी हों। सत्यनारायण ब्रह्म नारायण ब्रह्म के लिये नमस्ते। हे सर्वव्यापक भगवन् ! नमस्ते, आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, सत्य रूप का वर्णन करूँगा, सत्य बोलूँगा, उस मेरी आप रक्षा करें, आप वक्ता की आप रक्षा करें। हे भगवन् ! हमारे त्रिविध ताप दूर हों।

एकदा नैमिषारण्ये ऋषय: शौनकादय:।
पप्रच्छुर्मुनय: सर्वे सूतं पौराणिकं खलु।।१।।

एक समय नैमिषारण्य * में शौनक आदि ऋषियों ने पौराणिक * सूत * से पूछा -

१. **नैमिषारण्य** - लखनऊ और सीतापुर के बीच में एक स्थान है, नीमसार। यही प्राचीनकाल में नैमिषारण्य कहलाता था यहाँ एक बहुत बड़ा तालाब है। पहले यह यज्ञ-कुण्ड रहा होगा। इसमें घी की धारायें पड़ती थीं। दीर्घसत्र यज्ञ होते थे। कथा-वार्ताएँ होती थीं। कभी-कभी अनेक ऋषि इकट्ठे होते थे और ज्ञान-गोष्ठियाँ होती थीं। शौनक यहाँ के कुलपति थे।

२. **पौराणिक** - 'पुराण वेत्तीति पौराणिक:' पौराणिक वे लोग कहते थे जिन्हें इतिहास कण्ठस्थ होता था, वे बड़े वेदज्ञ, धर्म-निष्ठ, तपस्वी और साधनशील होते थे।

३. **सूत** - मनुष्यों के उस वर्ग को कहा जाता था जिन्हें आदि सृष्टि से वर्तमान समय तक का पूरा इतिहास विदित होता था। अब भी ऐसे कुछ लोग पाये जाते हैं। वे वेद तत्व निष्णात होते थे।

ऋषय ऊचुः

व्रतेन तपसा किं वा प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व महामुने॥२॥

ऋषियों ने पूछा- महामुने ! व्रत अथवा तप करके जैसे भी मनुष्यों का कल्याण हो और उसे मनोवांछित फल की प्राप्ति हो, वह कृपा करके कहिये ऐसी हम सबकी इच्छा है।

मर्त्यलोके जनाः सर्वे नाना क्लेश समन्विताः।
नाना योनि - समुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः।
तत्प्रशाम्येत् कथं मुने ! लघूपायेन तद्वद॥३॥

मुनिवर ! मर्त्यलोक में सभी मनुष्य अनेक प्रकार के क्लेशों से युक्त और नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर पाप कर्म में लीन हैं। भगवन् ! आप कोई ऐसा सरल एवं संक्षिप्त सा उपाय बताइये जिससे उन प्राणियों के दुःख छूट जाएं।

सूत उवाच

सत्यनारायणस्यैव व्रतं सम्यग्विधानतः।
कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा परत्र मोक्षमाप्नुयात् ॥४

वेदज्ञ श्री सूत जी ने कहा- हे ऋषियो ! आप सबके प्रति अमित स्नेह होने से मैं बताता हूँ।

वह उपाय है - ''विधि-विधान पूर्वक सत्यनारायण का व्रत ! अर्थात् सत्यनारायण भगवान् के निज नाम, रूप और कार्य (महिमा) की पावन कथा के प्रकाश में ईश्वर प्राप्ति के वैदिक साधनों के श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान द्वारा सत्यमय जीवन की प्राप्ति। इस व्रत अनुष्ठान या सत्य स्वरूप ईश्वर के प्रति समर्पित होकर जीवन जीने से मनुष्य दुःखों से छूटकर जीवन्मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।''

ऋषय ऊचुः

किं विधानं च को विधिः किं फलं च तद् व्रतम्।
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि करुणासिन्धो महामुने ॥

ऋषियों ने निवेदन किया- हे मुनिराज ! सत्यनारायण व्रत के अनुष्ठान का क्या विधि-विधान है ?

अर्थात् १- सत्यनारायण क्या है, २- उसका स्वरूप क्या है, ३- उसके कार्य कलाप या महिमा की कथा क्या है, ४- उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं और, ५- उसकी प्राप्ति का फल क्या है ? हे करुणा सागर ! यह सब सुस्पष्ट करने की कृपा कीजिए।

सूत उवाच

ओ३म् । स हि सत्यो यं पूर्वंचिद् देवासश्चिद्यमीधिरे।
होतारं मन्द्रकजिहव मित्सुदीतितिभिर्विभवसुम्।। (ऋ०५।२५।२)

वेद माता के शब्दों में श्री सूत जी कहते हैं- हे ऋषियो ! 'सचमुच वह नारायण ही सत्य है। जिस महादानी, वाणी की मस्ती प्रदान करने वाले प्रकाशपुञ्ज को ही पूर्ववर्ती विद्वान् भी सत्यमय दिव्य आचरणों द्वारा प्रकाशित करते हैं और जिसको निष्काम विद्वान् भी अपनी जीवन साधना से ज्योतित करते हैं, वही एकमात्र सत्यनारायण है।'

हे ऋषियो ! जीव और प्रकृति भी हैं तो सत् परन्तु बन्धन में आ जाते हैं। प्रकृति प्रभु की व्यवस्था से विकृत हो नाना रूपों के बन्धन में आ जाती है। जीव भी इन नाना रूपों में कर्मानुसार कभी बँध जाता है तो कभी छूट भी जाता है। केवल परमात्मा ही एक ऐसा सत है जो सदा एक रस और आप्तकाम है। वह

कभी किसी अवस्था में बन्धन में नहीं आता। अतएव वह सबसे ऊँचा और पराकाष्ठा का सत् है। वही सत्य स्वरूप है, वही सत्यनारायण है। *

ओ३म् । हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसा वादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओम् खं ब्रह्म।।

– (यजु० ४०।१०)

हे ऋषिवरो ! इस प्रकृति के सुवर्णमय चमकीले आवरण से उस सत्यनारायण की सत्ता ढक सी गई है। माया के लुभाने जाल में फंसे जीवात्मा को अपने उस निकटतम और प्रियतम सखा सत्यनारायण की अनुभूति नहीं हो पाती। 'तत्वं पूषन्न पावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।' हे ऋषियो ! सत्यनारायण प्रभु के साक्षात्कार के लिये माया के इस चमकीले ढकने को उठाना ही होगा। हे ऋषियो ! उस आकाशवत् सर्व व्यापक आदित्य पुरुष सत्यनारायण ब्रह्म का निज नाम ओ३म् है।।।१।।

* 'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म, सन्तीति सतः तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्।'
सत्ता वाले पदार्थ को सत् कहते हैं। उनमें साधु (सर्वश्रेष्ठ) होने से परमेश्वर का नाम सत्य है।

इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

- ऋ0 म0 १। सू0 १६४। मं0 ४६

(एकं सत्) वह सत्य स्वरूप- सत्यनारायण एक है। * उसका निज नाम ओम् है।

(विप्राः) ज्ञानी जन उस एक ओंकार को इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य (देव) अग्नि, यम, मातरिश्वा = वायु आदि (बहुधा वदन्ति) अनेक नामों * से पुकारते हैं।

१- तस्य वाचकः प्रणवः। योग शास्त्रे (१।१।२७)

ओमिति ब्रह्म। तैत्तिरीय आरण्यक प्र0७। अनु0८।

उस सत्यनारायण का नाम ओ३म् है। ब्रह्म का निज नाम ओंकार है।

ओम् प्रतिष्ठ यजु0 २।१३ मानव ! तू हृदय-मन्दिर में ओम् को प्रतिष्ठित कर।

ओम् क्रतो स्मर यजु0 ४0।१५ हे आत्मन् ! तू ओ३म् का स्मरण कर।

सत्ता वाले पदार्थ को सत् कहते हैं। उनमें साधु (सर्वश्रेष्ठ) होने से परमेश्वर का नाम सत्य है।

*स एकः न द्वितीयो न तृतीयो न चतुर्थः न पंचमो······· वह ईश्वर एक है, दो-तीन-चार-पाँच····· अर्थात् अनेक नहीं है। 'पतिरेक आसीत्' एको वशी सर्व भूतान्तरात्मा' आदि में भी इसी वैदिक एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया है (यजु0 २३।१)

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्तोऽक्षरस्स परमः स्वराट्।
स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमा॥ (कैवल्य उपनिषद्)

सब जगत् के बनाने से 'ब्रह्मा' सर्वत्र व्यापक होने से 'विष्णु' दुष्टों को दण्ड देने से 'रुद्र' मंगलमय होने से 'शिव', परमैश्वर्यमान् होने से 'इन्द्र,' और काल का भी काल होने से 'कालाग्नि' सत्यनारायण भगवान् के ही नाम हैं, जिसका निज नाम ओ३म् है।

---

* लोक व्यवहार में भी हम देखते हैं मनुष्य का निज नाम एक है, पर उसे सम्बन्ध पद, कार्य व्यापार और गुणों की दृष्टि से अनेक नामों से पुकारते हैं। मानो एक व्यक्ति का नाम सत्यव्रत है। यह उसका निज नाम है। सम्बन्ध की दृष्टि से उसे पिता जी, चाचा जी, ताऊ जी, दादा जी, भैया जी, आदि कहते हैं। कार्य की दृष्टि से उसे अध्यापक, प्रोफेसर, डाक्टर, वकील, सेठ आदि कहते हैं। किसी सार्वजनिक संस्था में पद की दृष्टि से उसे प्रधान जी, मन्त्री जी आदि कहते हैं, गुणों की दृष्टि से उसे धर्मात्मा, सदाचारी, सुशील, सौम्य कहते हैं। सत्यनारायण भगवान् के भी बन्धु, जनिता, माता-पिता, मित्र आदि सम्बन्ध वाची नाम हैं। विश्वकर्मा, अर्यमा, वायु, सूर्य, हिरण्य गर्भ आदि कर्मवाचक नाम हैं। खम्, ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, महादेव आदि गुणवाचक नाम हैं। और उसका निज नाम है- ओ३म्। उस ओ३म् प्रभु के गुण, कर्मवाची विभिन्न नामों से 'बहुदेवतावाद' की कल्पना करके अलग-अलग देवी देवताओं के नाम पर लड़ना-झगड़ना यह मानव की मूढ़ता और अज्ञता ही है, जिसका परिणाम केवल दुःख है। वैदिक एकेश्वरवाद-एक ईश्वर की उपासना ही मानव की सुख शान्ति का आधार है।

हे ऋषिगण ! प्रभु के निज नाम 'ओ३म्' की कैसी अनूठी महिमा है, सो सुनिए -

(१) अ, उ, म् , अ = ईश्वर, उ = जीवात्मा, म् = प्रकृति- इन तीन का ही पसारा है यह सब कुछ। प्रकृति सत्, जीव सत्+ चित्त = सच्चित् और प्यारा ओ३म् है- अ+ उ+ म्- सत् चित्+ आनन्द = सच्चिदानन्द स्वरूप। यह है सत्यनारायण का स्वरूप।

(२) 'अ' से मुख खुलता, 'उ' से स्थित रहता और 'म्' से बन्द हो जाता है। * विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय- सत्यनारायण के इस कार्यकलाप का, उसकी महिमा का कैसा दिव्य रहस्य छिपा है, प्यारे ओ३म् में।

(३) 'अ' आदि अक्षर है। ओ३म् भी अखिल ज्ञान-विज्ञान का आदि मूल है।

---

* गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है -

तुलसी 'रा' के कहत ही निकसत पाप पहार।
फिर आवन पावत नहीं देत कपाट 'मकार'॥

पर यह अशुद्ध है। राम के 'म' (म्+अ) में अन्त में मकार नहीं अकार है। वस्तुतः ओम् में ही यह ठीक से घटित होता है।

तुलसी 'ओ' के कहत ही निकसत पाप पहार।
फिर आवन पावत नहीं देत कपाट 'मकार'॥

(४) 'अ' अक्षर है- अविनाशी है। अ 'स्वर' है। वह स्वयं साधार और स्वयं प्रकाशक है तथा व्यञ्जनों (पदार्थों) का आधार होने से सर्वाधार है। प्रकृति और जीवात्मा सभी का आधार है - विश्वात्मा ओ३म् । अतः एकमात्र उसी की उपासना करनी योग्य है।

(५) 'अ' के साथ मिलकर 'उ' 'ओ' हो जाता है। सत्यनारायण ओ३म् की उपासना से जीवात्मा ऊँचा उठ जाता है। पर 'उ' जब 'अ' से विमुख ही प्रकृति 'म्' के साथ मेल करता है तो 'मु' बनकर प्रकृति के चरणों का दास बनकर नीचे की ओर चला जाता है, उसका पतन हो जाता है। तो शान्ति और आनन्द रूप जीवन-फल की प्राप्ति का एक ही साधानोपाय है- ओंकार की उपासना।

हे ऋषियो। इस प्रकार सत्यनारायण प्रभु का नाम, रूप, कार्य (महिमा) ओंकार की प्राप्ति के साधन और उसकी फलश्री आदि सब कुछ इस त्रिमात्रिक 'ओ३म्' में समाया है।

अखिल विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का- सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन

दृष्टान्त- एक महात्मा जी ने अपने शिष्य को यज्ञ की महिमा का उपदेश किया और बताया कि यज्ञ में सब कुछ समाया है। यह समझाने के बाद शिष्य को बाजार से सामग्री लाने को कहा- शिष्य को सामग्री की वस्तुओं का ध्यान नहीं रहा। उसने दुकानदार को एक पैसा देते हुए कहा- एक पैसा का सब कुछ दे दो। दुकानदार विचारवान् था। उसने पैसा भी लौटा दिया और एक पुड़िया में थोड़ी सी मिट्टी देते हुए कहा कि यह 'सब कुछ' है। इसे ले जाओ। आम का वृक्ष इसी में से मिठास, नींबू इसी में से खटास नीम इसी में से कड़वाहट, मिर्च इसी में से चरपराहट ले लेती है। सब प्रकार के रस, सब प्रकार के व्यञ्जन इसी में हैं। तो ऐसा ही है प्यारा ओ३म् जिसमें सब कुछ समाया है।

सबका आदि मूल 'ओ३म्' है। पवित्र गायत्री मन्त्र ओ३म् की ही व्याख्या है। और गायत्री मन्त्र का विशद् व्याख्यान हैं चारों वेद। यों चारों वेद ओंकार का ही विस्तृत व्याख्यान हैं -

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँ्सि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योम्। इत्येतत्। (कठोपनिषद्)

चारों वेद जिस पद की महिमा का व्याख्यान है, सभी धर्मानुष्ठान रूप तप मानो जिस पद का गान करते हैं, जिसकी कामना से साधक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हैं, हे नचिकेता। संक्षेप से कहता हूँ, वह पद 'ओ३म्' है।*

सभी ऋषिगण ओ३म् प्रभु की इस महान महिमा के चिन्तन में डूब से गये, मानो धरती-आकाश एक तान होकर गा रहे थे -

ओमानन्दम् ओमानन्दम् ओमानन्दम् ओ३म् ओ३म्।
ओमानन्दम् ओमानन्दम् ओमानन्दम् ओ३म् ओ३म्॥

इति शुद्ध सत्यनारायण कथायां प्रथमोऽध्यायः।

---

*कवियों ने इसी परम सत्य को सरल शब्दों में प्रस्तुत् करने का यत्न किया है।
मुख्य नाम है ईश का ओमनुभूत प्रसिद्ध। योगी जपते हैं इसे गाते हैं सब सिद्ध।
श्वास-श्वास पर ओ३म् जपि बृथा श्वास मत खोइ। ना जाने या श्वास को आवन होइ न होइ।
ओ३म् नाम सबसे बड़ा इससे बड़ा न कोइ। जो इसका सुमिरिन करे सिद्ध कामना होइ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(सत्यनारायण स्वरूप विचार)

ऋषय ऊचुः

सत्यनारायणस्यापि स्वरूपं वेदानुमोदितम्।
प्रभो ! वद सुस्पष्टं कृपां कृत्वा महामुने॥

हे प्रभो ! हे महामुने ।। हम कृतज्ञ हैं, आपने सत्यनारायण के मुख्य नाम 'ओ३म्' का परिचय कराया। अब आप सत्यनारायण के वेदानुमोदित स्वरूप को सुस्पष्ट बताने की कृपा करें। ऋषियों के इस निवेदन पर श्री सूत जी वेद के शब्दों में कहते हैं।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत॥ यजु० ३१।७

हे ऋषियो । 'यज्ञ भावना से सभी के कल्याणार्थ उस सत्यनारायण भगवान् ने ज्ञान, कर्म, उपासना और

विज्ञान विधायक अपनी कल्याणी वाणी ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को प्रकाशित किया।'

हे ऋषियो ! परम कृपालु भगवान् ने असीम कृपा करके हमें यह दिव्य मानव देह दी, भोगने के लिये यह संसार दिया और इस संसार को हम किस प्रकार भोगें, किस प्रकार संसार के व्यवहार और कर्त्तव्य-कर्मों को करें, ताकि हम संसार के माध्यम से जीवन के अन्तिम उद्देश्य प्रभु-दर्शन को भी पा सकें, इसके लिए अपना परम पवित्र वेद ज्ञान दिया।*

सच ही वेद उस परम कवि का अमर काव्य है। * वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। बीज रूप में सभी परा और अपरा विद्यायें वेद में हैं।

पर चारों वेदों का मुख्य विषय ब्रह्म (ओंकार) और उसकी प्राप्ति के साधनों का निरूपण करना * चारों वेदों के लगभग २० हजार मन्त्रों में सत्यनारायण के नाम रूप, कार्य, महिमा और उसकी प्राप्ति के साधनों का ही शतधा विस्तृत व्याख्यान हैं।

---

*यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्य:।
ब्रह्म राजप्याभ्यां॑ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।। यजु0 २६।२

*'वेदोऽखिलमो धर्म मूलम्' - वेद सभी कर्त्तव्य कर्मों (धर्मो) का मूल प्रेरक है (मनु0)

*देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

*अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्ति ईश्वरस्य खलु सर्वेभ्य: पदार्थेभ्य: (ऋग्वेदादि भा0 भू0)

भगवान् ने महान् कृपा करके इसी विशद् व्याख्यान का सार पवित्र गायत्री मन्त्र के एक-एक पद द्वारा प्रस्तुत किया है। इसलिये यह गुरुमन्त्र है, महामन्त्र है।

ओ३म् भूर्भुव: स्व:। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो न: प्रचोदयात्।। - यजु0 अ0 ३६। मन्त्र ३।।

यह पवित्र गायत्री मन्त्र है। पवित्र वेदों में कई बार यह मन्त्र आया है। यजुर्वेद में यह व्याहृति सहित आया है। ऋषियों, मुनियों ने इसकी भूरि-भूरि महिमा गाई है।

जिस सौभाग्यशाली मानव के आचरणों में इसका संगीत गूंजता है। जो अपने आचरण द्वारा इस मन्त्र को गाता है, वह तर जाता है। अत: यह गायत्री मन्त्र है। गायत्री छन्द में होने से भी इसे गायत्री मन्त्र कहते हैं। यह गायत्री मन्त्र ईश्वरीय सन्देश का सूत्र (सार संक्षेप) हैं। चारों वेद इस सूत्र की व्याख्या है।*

---

* गायत्री वेद का 'केन्द्रिय विचार' है पर जैसे किसी ग्रन्थ के केन्द्रिय विचार या सूत्र विचार को समझने के लिये लेखक की सम्पूर्ण रचना को पढ़ना आवश्यक है, बिना सम्पूर्ण रचना को मनोयोग पूर्वक पढ़ें केवल सूत्र के पाठ से लेखक का पूर्ण आशय हृदयंगम नहीं हो सकता। लेखक सूत्र के किस शब्द से क्या दृष्टिकोण आपको देना चाहता है, यह सम्पूर्ण ग्रन्थ के पाठ से ही आप जान सकेंगे। सम्पूर्ण ग्रन्थ पाठ से सूत्र का रहस्य आपको खुलेगा। यदि केवल सूत्र पाठ से ही काम चल सके तो लेखक का ग्रन्थ लेखन का परिश्रम ही व्यर्थ है। ठीक उसी प्रकार गायत्री मन्त्र का रहस्य जानने के लिये मन्त्र के एक-एक

'भूर्भुवः स्वः' इस महा व्याहृति सहित गायत्री के चार पद है। (१) भूर्भुवः स्वः। (२) तत्सवितुर्वरेण्यम् (३) भर्गो देवस्य धीमहि (४) धियो यो नः प्रचोदयात्। प्रथम पद में सत्यनारायण के स्वरूप का ज्ञान, दूसरे पद में उसके कार्यकलाप और महिमा का प्रकाशन, तीसरे पद में उसकी प्राप्ति के साधन और चतुर्थ पद में उसकी उपासना की फल-श्री का बड़ा सुन्दर विवेचन है। हे ऋषियो ! हम इन पर क्रमशः विचार करेंगे।

(१) भूर्भुवः स्वः = भूः + भुवः स्वः

वह सत्यनारायण ओ३म् प्रभु भूः = सत + भुवः = चित् + स्वः = आनन्द = सच्चिदानन्द स्वरूप है। जीव सत् + चित् है। प्रकृति सत् है। यह ईश्वर-जीव प्रकृति तत्व का रहस्य इस पद में निहित है। जीव बीच में है। वह सत्-चित् है, यह सदैव रहने वाला, अविनाशी अर्थात् अनादि सत्ता अर्थात् अनादि सत्ता वाली तो है, पर चैतन्य नहीं। ईश्वर अनादि सत्ता वाला + चैतन्य शक्ति युक्त + आनन्दगुण वाला है। ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों अनादि हैं। यही 'वैदिक त्रैतवाद' है। ईश्वर में तीन गुण, जीव में दो गुण और प्रकृति में केवल एक गुण है। जीव में आनन्द गुण का अभाव है। वह इसी के लिये भटकता रहता है। रात दिन की दौड़-धूप उसकी आनन्द के लिए है। तो मानव जीवन का उद्देश्य है- आनन्द की प्राप्ति। पर वह मिलेगा कहाँ?

पद में निहित दिव्य और महान् सन्देश को समझने के लिये चारों वेदों का श्रद्धा एवं मनोयोग पूर्वक पठन-पाठन, श्रवण, मनन परमावश्यक है। इसलिये तो वर्तमान युग के प्रज्ञावान् ऋषि ने हमें कहा था- 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परम धर्म है।'

जो वस्तु जिसके पास उसी से न वह मिलेगी ? अतः आनन्द प्राप्ति का अर्थ है- ईश्वर प्राप्ति। वही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है।

सूत उवाच

हे ऋषियो ! ईश्वर को प्यार करना ईश्वरोपासना है और प्रकृति को प्यार करना प्रकृति-उपासना है। आज का मनुष्य प्रकृति उपासक होने से दुःखी है। प्रकृति में आनन्द है कहाँ, उसके पास तो चैतन्यता भी नहीं। प्रकृति का उपासक गाँठ की चैतन्यता खोकर जड़-मति हो जाता है।

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।। (यजु० अ० ३५ मन्त्र १४)

परन्तु प्रकृति भी हेय नहीं है। वह 'उत्' है- श्रेष्ठ है, हाँ जीवात्मा 'उत्तरम्' श्रेष्ठतर है और परमात्मा 'उत्तमम्' श्रेष्ठतम है। श्रेष्ठ प्रकृति को साधन बनाकर श्रेष्ठतम परमात्मा की प्राप्ति ही श्रेष्ठतर जीवात्मा का जीवन-लक्ष्य है।

प्रकृति हेय है, संसार मिथ्या है, स्वप्न है, सांसारिक वैभव एवं धनादि ऐश्वर्य व्यर्थ हैं ऐसी बात नहीं। (यह 'नवीन वेदान्तवाद' मनघड़न्त और नितान्त असत्य है) हाँ प्रकृति साधन है, साध्य नहीं। पहले उस पर

सवार होकर और अन्त में उसे छोड़कर ही जीव परमात्मा को पा सकेगा। नाव साधन है नाव पर ही निरन्तर सवार रहने वाला कभी नदी पाद नहीं जा सकेगा। पर वह साधन तो है ही, बिना उसके भी किनारा मिलने वाला नहीं है। सच्चा गायत्री-साधक 'पुरुष-प्रकृति' के इस रहस्य को समझकर आनन्द के एकमात्र अधिष्ठान सच्चिदानन्द-स्वरूप सत्यनारायण की उपासना करता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।। (ऋ0 १।१६४।२०)

सदा एकत्र मित्रवत् रहने वाले दो पक्षी जीव और सत्यनारायण परमेश्वर एक ही वृक्ष पर साथ-२ रहते हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादु पीपली (भोग्य पदार्थ) को खाता है और दूसरा परमात्मा न खाता हुआ मात्र साक्षी होकर देखता है।

हे ऋषियो ! परमात्मा की जीवात्माओं से सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र सत्ता है। जीवात्मा परमात्मा का अंश नहीं है। जैसे शरीर का संचालक आत्मा है, वैसे सृष्टि का संचालक परमात्मा है। परमात्मा एक और अखण्ड है, जीवात्मा अणु और एक देशी है जबकि परमात्मा विभू और आकाशवत् सर्वव्यापक है।

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः। (यजु0 ३२।३)

उस प्रभु की कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं, उसके नाम की ही महती महिमा है।

ईशावास्य मिद ँ सर्वं यतकिञ्च जगत्यां जगत्। (यजु0 ४०।१)

हे ऋषियो ! वेद मां कहती हैं 'जो कुछ इस नाशवान् संसार में है, वह सब ईश्वर से व्याप्त हैं। ईश्वर सर्वव्यापक है, पर्वत की कोई ऊँची चोटी नहीं, कोई गहरी से गहरी गुफा नहीं, समुद्र का नीचे से नीचा तल नहीं जहाँ सत्यनारायण प्रभु न हों ईश्वर की सर्वव्यापकता और उसकी कर्मफल दात्री अटल व्यवस्था में ऐसा गहन विश्वास ही मनुष्य को निष्पाप और पवित्र बना सकता है।'

दृष्टान्त - एक आचार्य के दो शिष्य थे। उनकी परीक्षा के लिए कागज की दो चिड़ियाँ आचार्य ने मंगाकर दोनों को एक-एक देते हुए कहा-जाओ, इनकी गरदन ऐसी जगह तोड़ लाओ जहाँ कोई न देख सके। एक शिष्य गया और थोड़ी दूर पर एक झाड़ी के पीछे गरदन तोड़कर ले आया। दूसरा शिष्य सायंकाल तक लौटा और चिड़ियां को भी 'ज्यों की त्यों वापिस ले आया। कारण पूछने पर उसने बताया कि मैं उस झाड़ी के पीछे भी गया था, नदी के किनारे, पास के पर्वत की चोटी पर भी सभी जगह घूमता रहा पर प्रथम तो मैं स्वयं ही देखता था फिर मुझे वेद माता की यह सूक्ति- 'ईशावस्य मिदं सर्वम्' बराबर याद आती रही। इसलिये मैं चिड़िया की गरदन नहीं तोड़ सका। आचार्य ने प्रथम छात्र को अनुत्तीर्ण और दूसरे को उत्तीर्ण किया।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्। (यजु0 ४०।४)

हे ऋषिगण ! वह सत्यनारायण प्रभु मन से भी शीघ्रगामी हैं। मन जहाँ पहुँचता है, उससे पहले वह वहाँ पहुँचा हुआ है, उस 'सहस्राक्ष' सर्वदृष्टा प्रभु से न केवल शारीरिक और वाचिक कर्म ही छिपा सकते हैं, वरन् मानसिक कर्म-किसी का अनिष्ट चिन्तन आदि भी उससे नहीं छिपा सकते। इस प्रकार ईश्वर को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी और 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्' के सिद्धान्त को मानकर ही मानव समाज निष्पाप बनकर सुखी हो सकता है। 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' व्यक्ति और समाज में सदाचार लाने तथा सुख और शान्ति ,पाने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

हे ऋषियो ! गायत्री मन्त्र के प्रथम पद के प्रकाश में सत्यनारायण भगवान् के स्वरूप का यह संक्षिप्त विवेचन है, जिसका सार है -

'ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।'

इति शुद्ध सत्यनारायण कथायां द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

(सत्यनारायण के कर्तृत्व एवं महिमा विचार)

ऋषय ऊचुः

'यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव'।
तस्य नारायणस्य महिमां कथयस्व मुनिसत्तम॥

ऋषियों ने निवेदन किया- हे मुनिश्रेष्ठ ! पावमानी वेद माता के शब्दों में 'जो चेतन और जड़ जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही राजा है।' उस सत्यनारायण भगवान् के कर्तव्य और महिमा के विषय में बताने की कृपा करें।

सूत उवाच

हे ऋषियो ! सूत्र रूप में ईश्वर के नाम और स्वरूप कथन करने के पश्चात् पवित्र गायत्री मन्त्र के दूसरे पद में ईश्वर का कार्य और महिमा को बताया गया है -

(२) तत्सवितुर्वरेण्यम्।

(तत् सवितुः) वह सविता है। जगत् उत्पादक है। 'सवितः' इस पद द्वारा बताया है कि ईश्वर का कार्य है - सृष्टि को उत्पन्न करना, उसे स्थित रखना और प्रलय करना। *

हे ऋषियो ! सत्यनारायण प्रभु के रचना सामर्थ्य की कथा ऐसी है जो कभी समाप्त नहीं होती। 'प्रभु अनन्त प्रभु कथा अनन्ता' अतः इस कथा के जिस नायक ने सोई प्रकृति को जगा दिया, एक रूपा को अपने+ऋत (अटल) नियमों से अनेक रूपा बना दिया और उसी सत् प्रकृति को विकृति में लोकर असंख्य सूर्य, असंख्य नक्षत्र, असंख्य पृथिवियाँ, अनन्त समुद्र, अनन्त आकाश, असंख्य सौर मण्डल तथा संवत्सर, रात्रि दिन, पक्ष आदि काल-विभाग तथा असंख्य लोक बना दिये, उसकी कथा कितनी मनोरंजक है। प्रकाश की गति एक मिनट १ लाख ८६ हजार मील है। और कुछ नक्षत्र तो इतने दूर हैं कि उनका प्रकाश

*जन्माद्यस्य यतः। (वेदान्त दर्शन १।१२)

+ ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चा भीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।
ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।
ओ३म् सूर्याचन्द्रसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षरमथो स्वः।

- ऋ0 १०।१९०।१।३

पिछले अरब वर्षों का चला हुआ भी अभी तक हमारे पास पहुँच नहीं पाया। कितना बड़ा विस्तार इस सृष्टि का है। फिर सारे सौर मण्डल एक महा सूर्य के इर्द घूम रहे हैं और वह महासूर्य सारे सौर मण्डलों को ठीक व्यवस्था में रख रहा है। सभी अपनी-२ कक्षाओं में भ्रमण कर रहे।

क्या यह सब जड़ पदार्थ अपने आप ऐसा कर रहे हैं ? कदापि नहीं। ये सब उस महाव्रती सत्यनारायण के व्रतो * (नियमों) से बंधे हुए ही ऐसा कर रहे हैं।

दृष्टान्त - एक युवक था। वह ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखता था। उसका विचार था, सृष्टि के परमाणु विभिन्न मात्रा में स्वयं ही मिलकर विविध पदार्थों का निर्माण कर देते हैं। पिता उसे समझाने का यत्न करते कि बिना चेतन सशक्त सत्ता के जड़ तत्वों में स्वयं ही मिलने और किसी वस्तु के रूप में निर्मित होने की क्षमता नहीं है। पिता और पुत्र में यह संवाद प्रायः चलता रहता था। एक दिन पुत्र की अनुपस्थिति में पिता ने पुत्र की मेज पर रखी रंग की डिब्बी से रंग लेकर दीवाल पर सामने ही एक आकर्षक फूल बना दिया। पुत्र के कमरे में प्रवेश करने पर उसने पूछा कि इस सुन्दर फूल को किसने बनाया है ? पिता ने कुछ अजाना सा बनने का अभिनय किया और कहा कि पुत्र ! ऐसा लगता है रंग की डिब्बी को खोलकर विभिन्न रंग अपने-२ स्थान से चलकर दीवाल पर विभिन्न अनुपात में जाकर स्वयं ही लगते रहे और इस सुन्दर पुष्प का निर्माण हो गया। पुत्र ने जब बल पूर्वक कहा कि पिताजी ! यह सर्वथा असम्भव है। जड़ डिब्बी स्वयं खुल नहीं सकती। जड़ रंग अपने स्थान से बिना किसी के हिलाये हिल नहीं सकते। फिर कौन सा रंग किस अनुपात में लगे यह ज्ञान जड़ रंगों द्वारा कदापि सम्भव नहीं। पिता ने मुस्कराते हुए कहा कि मेरे प्यारे पुत्र ! जब एक छोटे से पुष्प का निर्माण बिना चेतन सत्ता के सम्भव नहीं तो नाना प्रकार के रंग-बिरंगे सुगन्धित फूलों, फलों, वृक्षों, वनस्पतियों, अन्न, मेबों और भांति-भांति के जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों

और विचित्रताओं से भरे इस मानव शरीर और सूर्य-चन्द्रमादि लोक-लोकान्तरों का निर्माण बिना निर्माता के कैसे सम्भव है ?

युवक का भ्रम दूर हो चुका था। प्रभु की सत्ता के समक्ष सिर झुका दिया।

हे ऋषियो ! इसी सत्य को वेद अपनी भावुक और मोहक शैली में कहता है-

ओ३म् यः पुष्पिणींश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्यवनीरधारयः।
यश्चासमा अजनो विद्युतो दिव उरुरूर्वा अभितः सास्युक्थ्यः।। ऋ० २।१३।७

'देख, भोले मनुष्य ! देख। इस रंग-बिरंगी भूमि को देख। कहीं बेल बूंटे हैं, कहीं फूलों की क्यारियाँ हैं। कहीं फलदार वृक्ष झूम रहे। इन सबको किसने बनाया ? खेत में किसान ने लगाया किन्तु वन में किसने सजाया ? फिर देख इस भूमि को भी तो कोई धारण कर रहा है ?' वेद मां वन्दना के स्वरों में समाधान देती है -

हरिण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। यजु० १३।४

अच्छा, और देख ! आकाश की ओर दृष्टि डाल। ये जो झिलमिल करते दीख रहे हैं न, उन्हें किसने उत्पन्न किया ? कोई बड़ा है, कोई छोटा है। ज्योतिषी बतलाते हैं, इन झिलमिल करने वालों में से कोई तो इतना बड़ा है जिसमें ५० लाख सूर्य आ जायें। सूर्य भी छोटा नहीं है। वही खोजी कहते हैं हमारी इस विशाल

भूमि-स-सागरा धरा जैसी तेरह लाख भूमियाँ सूर्य में समा सकतीं। अरे ! इतने विशाल तेज पुञ्जों को किसने उत्पन्न किया ? वेद मां पुनः अर्चना के स्वरों में कहती है -

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। यजु० ३२।६

जिसने इतने महान् दीप्तिमान् लोक-लोकान्तर बनाये वह अवश्य महान् है। कारण कार्य परम्परा का नियम अटल है। छोटी सी सुई को भी कर्त्ता के बिना बना हुआ मानने को तैयार नहीं होता, तो इस विशाल ब्रह्माण्ड का बनाने वाला अवश्य होना चाहिए। वेद कहता है- सास्युक्थ्य = वही तू पूज्य है, वरणीय है।

हे ऋषियो ! वह सत्यनारायण भगवान् सृष्टिकर्त्ता ही नहीं, पालनकर्त्ता और सहर्त्ता भी है, निस्सन्देह वह महतो महान् है। वह 'वरेण्यम्' है। एकमात्र वही सबसे श्रेष्ठ, पूजनीय और वरण करने योग्य है। माता-पिता, बन्धु-बान्धव निश्चय ही हमारे हितैषी हैं, हमारा कल्याण करने वाले हैं, किन्तु -

ओ३म् यदंग दाशुषेत्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमंगिरः। ऋ० १।१।६

आत्म सम्पर्क का निश्चित कल्याण तो एकमात्र उस वरणीय ओ३म् प्रभु के सुनहले हाथों में निहित है।

हे ऋषियो ! आओ पवित्र वेद और उपनिषदों की वाणी में उस वरणीय-पूजनीय देव की महिमा का गान और उसके कर्त्तव्य की स्तुति करें-

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।। (अथर्व0 १०।२३।८१)

हे प्रभो ! आप भूत भविष्यत्-वर्तमान-तीनों कालों के सब व्यवहारों को यथावत् जानते हो और सब पदार्थों के अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी हो। भगवन् ! सुख ही आपका स्वरूप है। हे ब्रह्म ! हे विश्वेश ! आपको हमारा भक्ति भरा नमन है।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।

प्रभो ! आप नित्य-स्वरूप हैं, चेतन-रूप हैं, आप एक हैं, आप भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपको जो लोग अपनी आत्मा के अन्दर साक्षात् करके देखते हैं, उनको वास्तविक तथा निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! आपके प्रकाश के तुल्य न तो इस सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमा और तारों का और न ही बिजली का अग्नि का तो कहना ही क्या ? आपके प्रकाश से ही ये सब प्रकाश वाले हैं। हे देव। आप स्व-प्रकाश स्वरूप है।

अपाणिपादौ जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्तिवेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

प्रभो ! आपके न हाथ हैं, न पाँव हैं *किन्तु आप सबको ग्रहण करने वाले हैं, और सबसे अधिक वेग वाले हैं। आपकी आँखें नहीं, परन्तु देखते सब कुछ हैं। आपके कान नहीं, परन्तु सुनते सब कुछ हैं। आप सबको जानते हैं, परन्तु आपको पूर्णतया जानने वाला कोई नहीं। आप ही सबके नेता, महाप्रभु, सर्वशक्तिमान् हैं।

*बिनु पग चलै सुने बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।।
-तुलसीदास

अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्॥

प्रभो ! आप सूक्ष्म हैं, आप महान् हैं, जीवात्मा के भीतर छिपे हुए हैं। हे दयामय। आपकी दया से ही आपके शुभ-दर्शन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय, नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥

हे सदा रहने वाले जगत् के कारण प्रभो ! तुझे नमस्कार हो। सर्वलोक के आश्रय, चेतनस्वरूप ! तुझे प्रणाम हो। सुखस्वरूप, मुक्ति के दाता ! तुझे हम नमस्कार करते हैं। हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परब्रह्म प्रभो! तुझे हमारा बार-बार प्रणाम हो।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥

प्रभो ! आप हमारी रक्षा करने वाले हैं, आप ही श्रेष्ठ हैं, आप ही जगत् के पालक और स्वप्रकाशक!

परमात्मन् ! आप ही अकेले जगत्कर्ता, रक्षक और संसार के पालन कर्त्ता हैं। आप ही सबसे बड़े, अचल और विकार-रहित हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

'भगवन् ! आप ही हमारे माता-पिता हैं, आप ही हमारे बन्धु और सखा हैं। स्वामिन् ! आप ही हमारे विद्या तथा धन हैं। हे नाथ ! आप ही हमारे सर्वस्व हैं और आप ही पूजनीय उपास्य देव हैं। आपके स्थान में किसी अन्य का भूलकर भी हम कभी पूजन न करें, यह संक्षेप से सत्यनारायण प्रभु के कर्तव्य और महिमा का कीर्तन है।'

इति शुद्ध सत्यनारायण कथायां तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(सत्यनारायण प्राप्ति साधन विचार)

ऋषय ऊचुः

पवित्र वेद के शब्दों ऋषिगण जिज्ञासा करते हैं -

ओं कया त्वं न ऊत्याभि प्रमन्दसे वृषन् कया स्तोतृभ्य आभर। (यजु० ३६।७)

हे मुनिप्रवर ! 'सब ओर से सुखों की वर्षा करने वाले, धर्मात्माओं और स्तोताओं को आनन्दित करने वाले सत्यनारायण भगवान् किन साधनों से प्राप्त होते हैं, सो हमको कृपा करके बताइये।'

सूत उवाच

हे ऋषियो ! वह सत्यनारायण प्रभु जिसका निज नाम 'ओ३म्' हैं, जिसका स्वरूप सच्चिदानन्द, निराकार है, जिसका काम सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करना है। ऐसा प्रभु ही (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, उपासने योग्य है।

क्या है उपासना ? कैसे हो उसकी उपासना ? क्या विधि है उस हृदयधन को प्राप्त करने की ? इसी का समाधान पवित्र मन्त्र के तृतीय पद में दिया है -

(३) भर्गो देवस्य धीमहि

हे ऋषियो ! उस वरणीय देव के पाप-नाशक, पुण्य-प्रापक विशुद्ध तेज का ध्यान और उस दिव्य तेज का धारण अर्थात् उस महादेव के परोपकार न्यायादि दिव्य गुणों को धारण करना ही उसकी उपासना है।

हे ऋषियो ! ध्यान या साधना को इस स्थिति तक पहुँचने के लिये पहली वस्तु- प्रभु मिलन की उत्कण्ठा या सच्ची भूख। इसके लिए आवश्यक है- संसार की अनित्यता शरीर की क्षणभंगुरता अथवा अपनी लघुता और प्रभु की महत्ता का भान। सत्यनारायण प्रभु का उपासक विचार करता है-

ओं अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।। (यजु० ३५।४।१२।७९)

हे आत्मन् ! अ+श्वत्थ पर तेरी बैठक है। पता नहीं कल भी यह शरीर रहेगा या नहीं ? अश्वत्थ = पीपल के पत्तों पर तेरा निवास है। पता नहीं वायु के एक ही झोंके में कब अलग हो जावे ? * अतः अविलम्ब

उस पुरुष की प्राप्ति के लिए ही पुरुषार्थ कर।

ओं वायुरनिल ममृतमथेदं भस्मान्त ँ् शरीरं। यजु० ४०।१५

हे अमर आत्मा यह तेरा शरीर नश्वर है। दो मुट्ठी राख ही इसका परिणाम है।

इहचेद वेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माँल्लोकादमृता भवन्ति।।

केनोपनिषद् के ऋषि ने चिताया था- 'मानव जन्म दुर्लभ है। इसे पाकर उस सत्यनारायण भगवान् को प्राप्त कर लिया तो ठीक, अन्यथा महान् विनाश है।'

हे ऋषियो ! सत्यनारायण भगवान् की प्राप्ति में ही जीवन की अमरता, धन्यता और सार्थकता समझकर साधक का अन्तर पुकार उठता है-

*क्षण भंगुर जीवन की कलिका कल प्रात को जाने खिली न खिली।
मलयाचल सेवित शीतल मन्द सुगन्ध समीर चली न चली।।
कर काल कुठार लिए फिरता तन नम्र है चोट झिली न झिली।
जप अब ओ३म अरी रसना, पुनि अन्त समय में हिली न हिली।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। यजु० २५।१३

तू है आत्म-ज्ञान बल-दाता सुयश विज्ञ जन गाते हैं।
तेरी चरण शरण में आकर भव सागर तर जाते हैं।।
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे विसराने में।
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु तुझसे लगन लगाने में।।

साधक प्रभु का स्तुति गान और महिमा का चिन्तन करते-२ उसे पाने के लिए जब बेचैन हो उठता है तो उसकी वाणी से प्रार्थना के स्वर निकलने लगते हैं -

अग्ने व्रतपते ! व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।। यजुर्वेद अध्याय १। मन्त्र ५।

प्रार्थना ही नहीं यह तो संकल्प है। यही प्रार्थना की सार्थकता है। साधक ने व्रत लिया है - सत्यनारायण का व्रत' साधक का संकल्प है- 'मैं नश्वर प्रकृति से ऊँचा उठकर उस शाश्वत सत्यनारायण को प्राप्त करूँगा। उस नारायण की सख्यता उसका प्यार पाने के लिए 'मैं जीवन और जगत् में जो भी अनृत (Unright) हैं,

उसे छोड़कर जो सत्य है ऋत (Right) है उसे अपनाऊंगा।'' हे ऋषियो ! साधक जानता है -

'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।'

उसने विज्ञजनों से सुना है- 'सत्य की राह छुरे की पैनी धार के समान कठिन है।' पर उसे विश्वास है कि -

सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।। मुण्डकोपनिषद्

'वह सत्यनारायण प्रभु सत्याचरण, तप, सम्यक् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त है। सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्य से ही देवयान मार्ग-प्रभु प्राप्ति का पथ विस्तृत होता है।'

'अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।' अथर्व० १०।८।३२

प्यारे भक्त ! वह तेरा प्रियतम तो तेरे सबसे निकट है, इतना कि तुझे कभी छोड़ता नहीं। वह इतना निकट है कि तुझे दीखता नहीं, जैसे कि आँख का सुरमा।

प्यारे साधक ! तुझे उसकी खोज है। क्या कहा ? वह सातवें आसमान पर चौथे आसमान पर, क्षीर

सागर में, बैकुण्ठ धाम में या गोलोक धाम में मिलेगा ? नहीं, मेरे प्यारे यह सब भ्रान्ति है- उसके मिलने का तो एक ही ठिकाना है -

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानाम् पूरऽयोध्या।
तस्यां हिण्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृता।। अ० १०।२।३१

प्यारे साधक ! यह शरीर नश्वर तो है, पर प्रभु का मिलन मन्दिर भी है। इस आठ चक्र और नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी में ही वह प्रकाश पूरित सुनहला आनन्दमय कोष है। वहीं उस प्रियतम की बांकी झाँकी होगी।

ज्यों तिल माँही तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रिय तुझमें बसे जाग सके तो जाग।।
हर जगह मौजूद है पर वह नजर आता नहीं।
योग साधन के बिना कोई उसे पाता नहीं।।

हे ऋषियो ! तो अब योग साधना (उपासना) की रीति बताते हैं -

हर रात के पिछले पहरे में एक दौलत लुटती रहती है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥

(१) तो साधक प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठे। प्रभु-मिलन का यह सर्वोत्तम समय है।

(२) शौच, स्नान, दन्तधावन आदि शरीर की शुद्धि करे, उत्तम स्वास्थ्य की भावना सहित भ्रमण एवं योगासनों से शरीर एवं इन्द्रियों को सबल-सशक्त बनाये।*

(३) सात्विक और शुद्ध कमाई के आहार से मन एवं बुद्धि को पवित्र करे।+

(४) उपासना के लिये यथा-सम्भव किसी समीप के जंगल में नदी या सरोवर के किनारे पर जावे *अथवा घर में ही किसी एकान्त-शान्त स्थान को निश्चित करे।

(५) उपासना का समय निश्चित हो। सूर्योदय होते-२ उपासना पूर्ण हो जावे।

(६) उपासना के लिये जिस आसन पर बैठे वह आसन निश्चित हो।

(७) सुखासन, पद्मासन, अर्ध-पद्मासन सिद्धासन या स्वस्तिक आसन, आदि किसी एक निश्चित

---

* अद्‌भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
+ आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः।
* अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधि मास्थितः। सावित्रीमप्यधीयते गत्वारण्यं समाहितः। मनु0

आसन में ही उपासना करे।

(८) सत्यनारायण प्रभु की महिमा एवं स्तुति-प्रार्थना, उपासना परक मन्त्र, श्लोक और गीतों को तन्मय होकर गावे, जिससे साधक का रोम-रोम पुलकित हो उठे।

(९) अब चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटा कर शुभ गुणों में स्थित कर प्रभु की गोद में बैठें। इसे 'योग' कहते हैं- 'योगश्चित वृत्ति निरोधः'

(१०) वृत्तियाँ पाँच प्रकार की है- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन्हें बुरे कर्मों से हटाने और ईश्वर में जोड़ने का मुख्य साधन है- ओम् जप।

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थ भावनम्॥ (यो0 १।१।२७)

'जो ईश्वर का ओंकार नाम है, सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है। और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिए, एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो जप के आरम्भ में प्राणायाम अवश्य करें।'

हे ऋषियो ! ओंकार का जप मन चंचलता जीतने का सर्वोत्तम साधन है।

"यज्जाग्रतो दूर मुदैतिदैवं" शिव संकल्प सूक्त के इन छः मन्त्रों में मन की अपार शक्ति का विवेचन है। यह घोर शत्रु भी है और महान् मित्र भी। निकम्मा मन अनेक दुरितों में फंसाकर मार डालता है। इसे काम

तो अपना, परिजनों और मित्रों का, ग्राम-नगर, प्रान्त, देश और विश्व की सेवा का और गाड़ दो 'ओ३म्' नाम का लट्ठा। कहो, मनीराम जी- इस पर चढ़ो और उतरो। आप देखेंगे यह आपका कैसा आज्ञाकारी सेवक बन गया है। ऐसा है ओ३म् नाम के सविधि जप का जादू।

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि।

(११) हे ऋषियो ! इस उपासना योग के १- यम, २- नियम, ३- आसन, ४- प्राणायाम, ५- प्रत्याहार, ६- धारणा, ७- ध्यान, ८- समाधि ये आठ अंग हैं।

तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः। योग० १।२।३०

अहिंसा (वैर बुद्धि का त्याग), सत्य (मन, वचन, कर्म से सत्य का पालन), अस्तेय अन्य के पदार्थ की इच्छा न करना, ब्रह्मचर्य इन्द्रिय का संयम तथा अपरिग्रह संग्रह वृत्ति का अभाव ये पाँच यम हैं।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। योग० १।२।३२

शौच (शरीर और आत्मा की पवित्रता) सन्तोष (पुरुषार्थ से प्राप्त में प्रसन्न रहना) तप (धर्माचरण में कष्ट सहन) स्वाध्याय (वेद शास्त्र का पढ़ना-पढ़ाना) और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के लिए *सर्वस्व समर्पण*

का भाव) ये पाँच नियम हैं।

(१२) ओ३म् का जप करते हुए आरम्भ में कम से कम तीन प्राणायाम करें।

(१३) 'प्रत्याहार' में इन्द्रिय एवं मन को विषयों से लौटाकर सत्यनारायण में जोड़ें।

(१४) 'धारणा' में मन को चंचलता से छुड़ा नाभि, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग में स्थित कर ओ३म् की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता का चिन्तन करें।

(१५) 'ध्यान' में ईश्वर का ही स्मरण करना, उसी के स्वरूप में मग्न हो जाना।

(१६) 'समाधि' में परमेश्वर के ही आनन्द स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है, जैसे मनुष्य जल में डुबकी मारके थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर में मग्न होके फिर बाहर आ जाता है। यही है 'सत्यनारायण' के भर्ग का धारण।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगम्।

हे ऋषियो ! यह प्रभु-दर्शन निर्बलात्मा को प्राप्त नहीं होता, न प्रमाद से, न पाखण्डयुक्त तप से। सविधि ओंकार जप एवं गायत्री अनुष्ठान 'वैदिक सन्ध्या' में योग के आठों अंगों का समावेश है। आओ, इस सोम- सुधा को पान कर धन्य-धन्य हो जाओ।

।। इति शुद्ध सत्यनारायण कथायां चतुर्थोध्यायः ।।

अथ पंचमोऽध्याय:

(सत्यनारायण उपासना फल-श्री विचार)

ऋषय ऊचुः

तव कृपा प्रसादेन वयं कृतार्थास्म: प्रभो !
किं फलं सत्यनारायणस्यैव पूजां ब्रूहि महामुने॥

ऋषियों ने कहा- हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने सत्यनारायण भगवान् के नाम रूप, कार्य, महिमा और उसकी प्राप्ति के साधनों से परिचित कराया। हे प्रभो ! हम कृतार्थ हो गये। अब आप हमें सत्यनारायण भगवान् की उपासना का फल भी बताने की कृपा करें।

सूत उवाच

हे ऋषियो ! पवित्र गायत्री मन्त्र के चौथे पद में उपासना का फल बताया है-

(४) धियो यो नः प्रचोदयात्।

हे ऋषियो ! 'भर्गो देवस्य धीमहि' की सम्यक् साधना से जब अन्तर प्रभु के भर्ग से जगमगा उठे, तब साधक श्रद्धा से कहे- 'धियो यो नः प्रचोदयात्' हे सत्यनारायण प्रभो ! मुझे बुद्धि वह दे जो तेरी ओर चले, सदा तेरी ओर। हमारे पूर्वज सदा ऐसी ही बुद्धि को याचते रहे हैं।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु।

- यजु० ३१।१४

हे ऋषियो ! मेधा बुद्धि की प्राप्ति में ही मानव जीवन की सफलता का रहस्य छिपा है, मनुष्य को पशु आदि योनियों से पृथक् करने वाला तत्व 'बुद्धि' है। बुद्धि की पवित्रता या सद्विवेक का जागरण सत्यनारायण प्रभु की उपासना का सर्वोत्तम फल है।

जब मैं थी तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिट गया, दीपक देखा माहिं॥

हे ऋषियो ! इस सद् विवेक के प्रकाश में साधक की समर्पण भावना से उसका 'अहम्'(अभिमान) तो नष्ट हो जाता है, पर सत्यनारायण की उपासना या सच्ची वैदिक-ईश्वर भक्ति-साधक में दैन्यता, आत्म हीनता नहीं लाती, वरन् उसके आत्म-विश्वास को जगाती है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ यजु० ३१।१८

यह सत्यनारायण के उपासक की वाणी है- 'मैं प्रकृति से परे उस प्रकाश पुञ्ज सत्यनारायण को जानता हूँ अब मेरे पास दुःख, शोक, कष्ट, क्लेश पाप-ताप कहाँ ?'

सत्यनारायण की उपासना से सद्विवेक मिला और सद्विवेक से 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे' श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ की प्रेरणा मिली। लो, देखते-देखते साधक ने अपने प्रभु के साथ सौदा ही कर डाला-

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

वेद माता के स्तवन से, गायत्री की साधना से सत्यनारायण की उपासना से साधक की दीर्घ आयु, बलिष्ठ प्राण, श्रेष्ठ सन्तान, गवादि उत्तम पशु, धन और तेजस्वी व्यक्तित्व सब कुछ मिलता है पर साधना की राह का अन्तिम चरण तो है इस सब कुछ को प्रभु के चरणों में समर्पित कर प्रभु के प्यारों की सेवा में लगाकर प्रभु का प्यार ले लेना। कैसा भाग्यशाली है वह जो कह सकता है -

पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है, पाता न जब तक जीव तुमको भटकता सविशेष है।
जो जन तुम्हारे पद-कमल के असल मधु को जानते, वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते॥

हे ऋषियो ! लोक-सेवा के लिए मुक्ति के आनन्द का भी त्याग ! 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अहा ! यह त्याग ही तो सच्चा भोग है। 'इदं न मम' ही जीवन है। 'इदं मम' ही मृत्यु है यही तो है यज्ञ-रहस्य।

हे ऋषियो ! 'स्वर्ग कामो यजेत' शान्ति का अभिलाषी यज्ञ करें। 'अयं यज्ञो विश्वस्य नाभिः' यज्ञ विश्व-देह की नाभि है, केन्द्र है। यज्ञ की इस महिमा को समझकर ही महर्षि मनु ने व्यवस्था दी थी -

ब्रह्मयज्ञं देवयज्ञं पितृयज्ञं च सर्वदा नृयज्ञं अतिथियज्ञं च यथाशक्तिर्न हापयेत्।

१- ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या प्रभु चरणों में समर्पण २- देव यज्ञ-जन हित के लिये द्रव्यों का समर्पण ३- पितृ यज्ञ-जीवित माता-पिता और गुरुजनों की सेवा ४- अतिथि यज्ञ-आप्त विद्वानों और निष्काम देश भक्तों की सेवा ५- भूत यज्ञ-प्राणि मात्र के प्रति सद्भावना। यह पञ्च यज्ञ, महायज्ञ हैं।

ओं शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु। यजु० ३६।१२

उपासना से प्राप्त विवेक के आलोक में साधक को स्पष्ट है कि शान्ति स्रोत प्रभु के सान्निध्य से शान्ति की धाराओं में स्नान करना उसका जीवन लक्ष्य है। पर सद् विवेक के प्रकाश में उसे यह भी स्पष्ट है कि-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ यजु० ४२।२

केवल सद्ज्ञान से नहीं वरन् जीवन के अन्तिम क्षण तक कर्त्तव्य-रत रहकर ही उसे अभीष्ट सिद्धि होगी, इस निष्काम कर्म योग के अतिरिक्त प्रभु-प्राप्ति का अन्य कोई सरल मार्ग है ही नहीं।

हे ऋषियो ! ब्रह्म यज्ञ द्वारा साधक इन्हीं कर्त्तव्यों की प्रेरणा पाता है। सच्चा भक्त 'तप' के नाम पर शरीर और इन्द्रियों को सुखाता नहीं। वह 'बलमुपास्व' बल की उपासना करता है। वह जानता है- 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' बलहीन प्रभु को नहीं पा सकता। अतः वह इन्द्रिय स्पर्श मन्त्रों द्वारा मानसिक पवित्रता, प्राणायाम द्वारा बौद्धिक निर्मलता और अघमर्षण मन्त्रों द्वारा आत्मा की निष्पापता सम्पादित कर आत्म-निर्माण करता है।

हे ऋषियो ! सत्यनारायण का उपासक पहले स्वयं अपने प्रति सच्चा होता है और तब 'मनसा परिक्रमा' के मन्त्रों द्वारा सब ओर अपने रक्षक प्रभु को अनुभव कर लाभ हानि जय-पराजय, यश-अपयश का विचार त्याग एकमेव प्रभु की आज्ञा पालन के रूप में उसी की साक्षी में सर्वहित की भावना से समाज वेदी पर स्वयं को आहुत कर देता है। अपने प्रति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्वमानव और प्राणिमात्र के प्रति-कर्तव्य पालन में उसकी एक ही रट है- 'योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः' बस यही है उपस्थान की, भूमिका। अपने और अन्यों के प्रति कर्त्तव्य-पालन का जोड़ ही है- प्रभु भक्ति ! प्रभु तो 'अकामो धीराः' हैं, पूर्णकाम हैं। प्रभु की प्रजा की सेवा ही प्रभु के भग को, उसके प्यार को पाने का एक मात्र साधन है। अन्य चार यज्ञों में भी प्रेम, सेवा और

त्याग के सोपानों का विकास है।

हे ऋषियो ! वर्णाश्रम धर्म का पालन इसी यज्ञ-भावना से ओत-प्रोत है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस फल चतुष्टय की प्राप्ति का आधार स्वधर्म-निष्ठा उपासना का एक अन्य महत्वपूर्ण सुफल है।

उपासक को एक नई दृष्टि मिल जाती है। वह एक ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी जो भी है- इस आश्रम मर्यादा का पालन जब ईश्वरार्पित बुद्धि से करता है तो उसका हर कार्य व्यापार 'प्रभु-पूजा' बन जाता है। कवि के शब्दों में 'आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाये।'

हे ऋषियो ! इस अवस्था में जहाँ एक योगी-योग साधना में प्रभु दर्शन करता है, वहाँ एक समर्पित ब्राह्मण वेदाध्ययन और वेद-प्रचार कार्य में प्रभु की छवि निहारता है। इसी प्रकार एक क्षत्रिय अन्यायी के विरुद्ध उठी अपनी तलवार में, एक वैश्य अपनी तराजू की सचाई में और एक शूद्र सेवा-भाव में उस अदर्शनीय के दर्शन कर निहाल हो जाता है। एक ही कामना रहती है ऐसे उपासक की -

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्तनाशनम्॥

हे ऋषियो ! जीवन के प्रति यह सत्य दृष्टि ही सत्यनारायण की उपासना का फल है। आज उसकी यह साध पूर्ण हो गई है उसका जीवन पात्र निश्छिद्र है। उसके नेत्रों से अब सरसता टपकती है, वाणी में माधुर्य, मन में सचाई और हृदय में उदारता का सागर ठाठें मारता है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणया श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

साधक की व्रत दीक्षा पूर्ण हो गई है, सभी अनृत उससे अब दूर हैं। 'असत्य का त्याग और सत्य की धारणा तथा सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य-असत्य को विचार कर करना ही उसका स्वभाव बन गया है। सत्य चिन्तन, सत्य दर्शन, सत्य श्रवण, सत्य मनन, सत्य आचरण ही अब उसका जीवन है। उसे हृदयंगम हो गया है- सत्य ही नारायण है और नारायण ही सत्य है।' कैसी धन्य स्थिति है यह।

हे ऋषियो ! सत्यनारायण के साथ इस अभिन्नता की स्थिति में साधक कह उठता है- 'त्वमस्माकम् तवाहमस्मि' तू मेरा है, मैं तेरा हूँ। तू आनन्दमय है, मैं भी 'आनन्दी भवामि' आनन्दमय हो गया हूँ। साधक के अंतर्हृदय में एक संगीत गूँजने लगता है- ओमानन्दम् ओमानन्दम् ओमानन्दनम् ओम् ओम्। और तब धरती का कण-कण इस संगीत के स्वर मिला कर गा रहा होता है -

नमः शम्भवाय च मयो भवाय च। नमः शंकराय च मयस्कराय च।
नमः शिवय च शिवतराय च॥ - यजु० १६।४१

हे ऋषियो ! जो लोग इस श्रुति-सम्मत पावन कथा को किसी भी दिन श्रद्धा सहित सुनते हैं और इसके अनुसार विवेक युक्त सत्याचरण का व्रत लेते हैं अर्थात् किसी बुराई को छोड़ अच्छाई धारण का व्रत लेते हैं, वे धीरे-२ पूर्णं सत्यमय बनकर सत्यनारायण भगवान् को पा लेते हैं, उनके लोक-परलोक दोनों बन जाते हैं। हे ऋषियो ! जो कथा सुनकर भी सत्याचरण नहीं करते उन्हें कोई फल नहीं मिलता।

। इति सत्यनारायण कथायां पंचमोऽध्यायः।